जनसत्ता

6 जून, 2019

हार का ठीकरा

आम चुनाव के नतीजे आने के बाद से हार के कारणों को लेकर कांग्रेस के भीतर लगातार मंथन और आरोप-प्रत्यारोप का दौर चल रहा है। कांग्रेस को सकते में डालने वाली बड़ी बात यह रही कि राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में चार महीने पहले ही उसने सत्ता में वापसी की थी, वहां लोकसभा चुनाव में उसका सफाया हो गया। पंजाब को छोड़ कर दूसरे राज्यों में पार्टी को जीत की वैसी उम्मीद नहीं रही होगी जो अपने शासन वाले राज्यों में थी। इसलिए अब बार-बार यही सवाल उठ रहा है कि पार्टी आखिर क्यों हार गई? क्या इसके लिए राज्यों के मुख्यमंत्री और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष जिम्मेदार हैं? क्या कांग्रेस-शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्षों ने जीत के लिए वैसी हाड़-तोड़ मेहनत नहीं की, जिसकी जरूरत थी और जिसकी उनसे उम्मीद थी? या फिर सरकार और संगठन के शीर्ष नेताओं के बीच मतभेदों और तालमेल की कमी ने पार्टी की नैया डुबो दी? रणनीति में कहां कमी रह गई? पिछले दस दिनों के भीतर कांग्रेस कार्यसमिति की कई बैठकें हो चुकी हैं, पार्टी अध्यक्ष से नेताओं की मुलाकातें और तमाम तरह की चर्चाएं हो रही हैं, लेकिन अभी तक तय नहीं हो पाया है कि हार का जिम्मेदार कौन है? किस पर फोड़ा जाए हार का ठीकरा?

कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय पार्टी के लिए हार से भी बड़ा संकट उसमें जिम्मेदार नेताओं का अभाव है। वरना हार को लेकर राजस्थान से जो खबरें आ रही हैं वे नहीं आतीं! राजस्थान में प्रदेश के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष व उपमुख्यमंत्री सचिन पायलट के बीच जिस तरह का विवाद सामने आया है, पार्टी की हार के कारण तो स्पष्ट तौर पर उसी में नजर आते हैं। अब साफ हो गया है कि चुनाव में कांग्रेस इसलिए बुरी तरह पिटी कि सरकार और संगठन में तालमेल की कमी तो थी ही, टिकट बंटवारे से लेकर चुनाव प्रचार तक में पार्टी के भीतर जमकर मतभेद थे, जो नतीजों के बाद खुल कर सामने आ गए। गहलोत सरकार के मंत्री और कई विधायक तक साफ कह रहे हैं कि हार के लिए मुख्यमंत्री ही जिम्मेदार हैं। विधायकों और मंत्रियों का इस तरह मुखर होना इस बात का पुख्ता संकेत है कि प्रदेश कांग्रेस में खेमेबाजी तगड़ी है जिसका खमियाजा कांग्रेस को लोकसभा चुनाव में उठाना पड़ा है।

राजस्थान में अब ताजा विवाद मुख्यमंत्री के बेटे वैभव गहलोत की हार पर केंद्रित हो गया है। वैभव गहलोत ने जोधपुर संसदीय सीट से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ा था और दो लाख सत्तर हजार से ज्यादा वोटों से हार गए। मुख्यमंत्री के अपने क्षेत्र में ही पार्टी की अगर यह हालत है तो प्रदेश में क्या रही होगी, इसका अंदाजा जा सकता है। अब मुख्यमंत्री कह रहे हैं कि इस हार की जिम्मेदारी सचिन पायलट लें। गहलोत ने यह बयान भले किसी संदर्भ में दिया हो, लेकिन उनके इस बयान से विवाद और तूल पकड़ गया। सवाल है कि हार के लिए अकेले मुख्यमंत्री या सिर्फ प्रदेश अध्यक्ष कैसे जिम्मेदार हो सकते हैं? हालांकि नतीजों के ठीक बाद पार्टी अध्यक्ष राहुल गांधी ने हार का ठीकरा वरिष्ठ नेताओं पर यह कहते हुए फोड़ा था कि इनकी दिलचस्पी अपने बेटों को टिकट दिलवाने में ही रही। ऐसे में क्या लगता नहीं है कि पार्टी अध्यक्ष के इस कथन में ही हार के कारण छिपे हैं। फिर भी हार की जिम्मेदारी न तो तय हो पा रही है और न ही कोई लेने को तैयार है। कांग्रेस के लिए इससे बड़ा संकट और क्या हो सकता है!

नवजात का जीवन

किसी भी देश में विकास के चढ़ते ग्राफ के बरक्स अगर जन्म के बाद शिशुओं की मौत के आंकड़े चिंता पैदा करते हों तो उस पर सवाल उठना लाजिमी है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के तमाम दावों के बावजूद प्रसव के दौरान माताओं और शिशुओं की मौत की दर पर काबू पाने में कामयाबी नहीं मिल पाई है। हालांकि पिछले कुछ सालों के दौरान इसमें कुछ सुधार जरूर दर्ज किया गया है, लेकिन इससे संबंधित आंकड़ों को अब भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। हाल ही जारी हुए एसआरएस यानी सैंपल रजिस्ट्रेशन सिस्टम की ओर से जारी आंकड़ों के मुताबिक देश के कुछ राज्यों में जहां शिशु मृत्यु दर में कमी आई है, वहीं कई राज्यों के आंकड़े अभी भी चिंताजनक हैं। मसलन, मध्यप्रदेश में आज भी जन्म लेने के बाद प्रति एक हजार बच्चों में से सैंतालीस की मौत पांच साल की उम्र तक पहुंचने के पहले ही हो जाती है। राज्य के ग्रामीण इलाकों में स्थिति और ज्यादा बुरी है और शिशुओं के मरने का आंकड़ा इक्यावन तक है। उत्तर प्रदेश में भी हालत बेहद निराशाजनक है और प्रति एक हजार बच्चों में से इकतालीस बच्चों की मौत असमय ही हो जाती है। मामूली सुधार बिहार में देखा गया है, जहां अब नवजात बच्चों के मरने का यह अनुपात पैंतीस है।

देश के कुछ अन्य राज्यों में कोई खास बदलाव नहीं दर्ज किया गया है। इसके बावजूद केरल और नगालैंड जैसे कुछ राज्य यह आदर्श सामने रखते हैं कि मामूली इच्छाशक्ति के साथ इस गंभीर समस्या को काबू में किया जा सकता है। केरल में प्रति एक हजार शिशुओं में से जहां यह संख्या दस है, वहीं नगालैंड में महज सात। यानी कुछ राज्यों में काफी सकारात्मक सुधार के बावजूद दूसरे कई राज्यों में अपेक्षित बदलाव देखने में नहीं आया है और यही वजह है कि समूचे देश के स्तर पर यह आंकड़ा प्रति एक हजार में तैंतीस बच्चों का है। अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश में कुपोषण की समस्या से लेकर स्वास्थ्य सेवाओं तक के मामले में दावे और हकीकत क्या हैं। सही है कि पिछले दो-ढाई दशकों के दौरान देश भर में इस समस्या पर काबू पाने के मकसद से सरकारों की ओर से गर्भवती माताओं के पोषण से लेकर नवजातों के टीकाकरण जैसे अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। लेकिन मुश्किल यह है कि कई बार इसके साथ जुड़े कुछ दूसरे कारकों की अनदेखी की वजह से समस्या का अपेक्षित हल नहीं निकल पाता है।

दरअसल, जिन राज्यों में आज भी सामाजिक परंपरा के रूप में और राजनीतिक संरक्षण की वजह से बाल विवाह का चलन है, वहां गर्भवती होने के बाद कम उम्र की माताओं की सेहत का सीधा असर उसके बच्चे पर पड़ता है। प्रसव के दौरान स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, संक्रमण, निमोनिया और दस्त जैसी स्थितियां बच्चों की मौत की बड़ी वजह बनती हैं। इसके अलावा, समाज में स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव के मानस की वजह से बचपन से बेटियों के पोषण के मामले में लोग कटौती करते हैं। इसका असर महिलाओं की सेहत पर दीर्घकालिक पड़ता है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि एक कुपोषित महिला जिस बच्चे को जन्म देगी, वह भी कुपोषण का शिकार होगा और उसके स्वस्थ रहने और जीने की संभावना भी कम होगी। इसलिए जरूरत यह है कि न केवल स्वास्थ्य सेवाओं तक साधारण लोगों की पहुंच सुनिश्चित की जाए, बल्कि सबसे हाशिये पर पड़े तबकों के बीच खासतौर पर महिलाओं के पोषण के स्तर में पूरी तरह सुधार लाने की व्यवस्था की जाए। अन्यथा माताओं और शिशुओं की चिंताजनक मृत्यु दर देश के विकास पर सवाल की तरह कायम रहेगी।

कल्पमेधा

जो जान गया कि उससे भूल हो गई है और उसे ठीक नहीं करता, वह एक और भूल करता है।

-कन्फ्यूशियस

शहरीकरण की चुनौतियां

मुकेश पोपली

शहरीकरण अपने आप में कभी समाप्त न होकर निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और विभिन्न नीतियों में समय-समय पर बदलाव आदि के कारण और आर्थिक तथा ढांचागत साधनों की आसानी से उपलब्धता नहीं होने के कारण भी इस प्रकार की परियोजनाओं को लागू करने में देरी होती है।

शहर हमेशा से ही आकर्षक रहे हैं। हर आदमी शहर में जाकर बसना चाहता है। आखिर शहरों में ऐसा क्या है जो गांवों में नहीं है? कहा जाता है कि आधुनिकीकरण के प्रति आकर्षण, उच्च शिक्षा, रोजगार की उपलब्धता, चिकित्सा सुविधाओं आदि के कारण हर कोई शहरों में रहना चाहता है। जहां एक ओर शहरों का अपना आकर्षण है, वहीं दूसरी ओर शहरों की अपनी गंभीर समस्याएं भी हैं, जैसे वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, बढ़ती भीड़, सार्वजनिक परिवहन सेवाओं का घोर अभाव, बुनियादी सेवाओं का खस्ताहाल ढांचा आदि। इन समस्याओं से शहरों का विकास पीछे छूट गया है, वे तेजी से नरक बनते जा रहे हैं। शहरीकरण की सबसे बड़ी समस्या है कि एक कम क्षेत्र में अधिक से अधिक आबादी का रहना, जिसके लिए शहर में जगह समाप्त होती जा रही है। एक के ऊपर एक भवन बन कर तैयार होते हैं, लेकिन गांवों जैसा शुद्ध वातावरण फिर भी नदारद रहता है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री राबर्ट रेडफील्ड मानते हैं कि शहरी समाज की विशेषताओं में प्रमुख रूप से वृहद जनसंख्या होती है और साथ ही उसका दूसरे समाजों से व्यापार और संचार के माध्यम से निकट का संबंध होता है, उसमें एक जटिल श्रम-विभाजन भी होता है।

इसके आधार पर यह कहना गलत नहीं होगा कि शहरों में प्रारंभ से ही भीड़-भाड़ रही है। धीरे-धीरे ज्यादातर गांव और कस्बे भी शहरों का रूप धारण करते जा रहे हैं। चौड़ी सड़कें, बहुमंजिला इमारतें, बड़े-बड़े बाजार, आधुनिक यातायात सुविधाएं, उद्योग-धंधे, आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित अस्पताल, शिक्षण-संस्थान आदि किसी भी शहर की विशेषता हैं। लेकिन दूसरी ओर गांवों और कस्बों में छोटी-छोटी दुकानें, पालतू पशु, कच्चे-पक्के घर, खेत-खलिहान, कुएं और नहरें आदि उपलब्ध हैं। यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तब अंतर तो साफ दिखाई देता है। लेकिन, शहर हो या गांव, दोनों ही भारत की अर्थव्यवस्था के मुख्य अंग हैं और दोनों का ही अपना-अपना महत्त्व है।

विज्ञान के साधनों ने आज व्यक्ति के जीवन को बहुत आसान बना दिया है। बहुत सारा काम मशीनों से होने लगा है। यह शहरीकरण का ही नतीजा है कि आज का बचपन जल्दी किशोरावस्था और किशोरावस्था शीघ्र ही युवावस्था की ओर अग्रसर है। संचार साधनों में नित्य-प्रति नई क्रांति देखने को मिल रही है। रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्रों आदि के साथ-साथ सोशल मीडिया भी आज आसानी से उपलब्ध है। गांवों में थोड़े भी पढ़े-लिखे युवा खेती से मुंह मोड़ रहे हैं। बिजली, पानी, लकड़ी, लोहा, कुटीर उद्योग आदि में महारत हासिल करने के लिए हर युवा शहर की ओर भागता नजर आता है। गांव में कमाई के साधन बहुत कम होते हैं और आमदनी कम होने के कारण बहुत से लोग आत्मनिर्भर नहीं बन पाते। ऐसे में गांव के मेहनतकश लोग न चाहते हुए भी रोजगार की तलाश में शहर आते हैं और फिर वहीं बस जाते हैं।

आधुनिक युग पुरातन परंपराओं को पीछे छोड़ आगे बढ़ना चाह रहा है। शहरों की चकाचौंध से हर व्यक्ति आकर्षित है। शहर के सेवा संस्थानों, शिक्षण संस्थानों, अस्पतालों आदि में पिछले तीस वर्षों में अनेक आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध होने से प्रत्येक नागरिक शहर में आना चाह रहा है। देश में औद्योगिक क्रांति को बढ़ावा देने के लिए शहरों के आसपास की जमीन को ऊंचे दामों पर खरीदा जा रहा है और साथ ही आवास समस्या से निपटने के लिए भी जमीन को उनके पुराने मालिकों से खरीदा गया है। बड़े-बड़े राजमार्गों, हवाई अड्डों के निर्माण के लिए भी अनेक शहरों में योजनाओं को कार्यान्वित किया गया है। सरकार ने शहरों को और आधुनिक बनाने के लिए 'स्मार्ट सिटी' की मुहिम छेड़ दी है। पूरे देश में नब्बे शहरों को 'स्मार्ट सिटी' बनाने के लिए विभिन्न परियोजनाओं पर काम किया जा रहा है। इन स्मार्ट शहरों में वे तमाम सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है जिनसे देश आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में समान रूप से और निरंतर विकास कर सके। यद्यपि अभी भी यह कार्य रेंगती हुई गति से ही हो रहा है।

एक अनुमान के अनुसार स्मार्ट सिटी की लगभग तीन हजार योजनाओं में से केवल एक सौ पचास योजनाएं मूर्त रूप ले सकी हैं। शहरीकरण अपने आप में कभी समाप्त न होकर निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और विभिन्न नीतियों में समय-समय पर बदलाव आदि के कारण और आर्थिक तथा ढांचागत साधनों की

आसानी से उपलब्धता नहीं होने के कारण भी इस प्रकार की परियोजनाओं को लागू करने में देरी होती है।

आजादी के समय भारत की कुल जनसंख्या के लगभग अस्सी फीसद लोग गांवों में निवास करते थे। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर थी। देश को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए उद्योग-धंधे और कल-कारखानों की स्थापना की जाने लगी थी। भारत को प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए समय-समय पर अनेक उपाय किए जाते रहे। कृषि में भी पूर्ण आत्मनिर्भरता हासिल करने के लिए श्वेत क्रांति और हरित क्रांति ने जोर पकड़ा और ये दोनों क्रांतियां अपने उद्देश्यों में सफल रहीं। आजादी के सात दशक बाद भी लगभग साठ फीसद आबादी का मुख्य आजीविका साधन खेती ही है। लेकिन ग्रामीण आबादी घट कर लगभग उनहत्तर प्रतिशत पर आ गई है। ग्रामीण आबादी का कम होना बता रहा है कि शहरों पर बोझ बढ़ा है। शहरी आबादी बढ़ने से शहरों में अनेक प्रकार की समस्याएं जन्म ले चुकी हैं और आवासीय समस्या के साथ-साथ ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण आदि समस्याओं ने शहरी जीवन को लीलना शुरू कर दिया है। शहरों और महानगरों में आवास की समस्या बड़ी चुनौती के रूप में सामने आई है। सबके लिए आवास उपलब्ध कराना गंभीर समस्या है। शहरों और महानगरों में झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या बढ़ती जा रही है। एक तरफ अट्टालिकाओं का निर्माण किया जा रहा है तो दूसरी तरफ एक से सटे एक छोटे-छोटे मकानों में चार-चार परिवार रहने लगे हैं। ये वही लोग हैं जो फैक्ट्रियों, कारखानों आदि में या फिर कोई अन्य छोटा-मोटा काम करके जीवन-यापन करते हैं।

शहरीकरण की समस्या बढ़ने के साथ ही अपराध भी तेजी बढ़े हैं। एक तरफ पैसे के लालच में अपहरण और छीना-झपटी की घटनाएं तेजी से बढ़ रही हैं तो दूसरी ओर महिलाओं से छेड़छाड़ व अन्य अपराध, बाल-तस्करी जैसी घटनाएं भी तेजी से बढ़ी हैं। साथ ही मादक पदार्थों का कारोबार तेजी से फलफूल रहा है। यदि गौर किया जाए तो हम पाएंगे कि शहरीकरण से उत्पन्न अनेक समस्याओं के पीछे मूल कारण आवास ही है। यदि नगरों का योजनाबद्ध विकास किया जाए और साथ ही पुरानी योजनाओं को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जाए तो इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है। दरअसल, आवास समस्या के कारण ही जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, यातायात समस्या, स्वास्थ्य समस्या, पर्यावरण समस्या आदि पैदा होती हैं। चरणबद्ध योजना के निर्माण और उसके अनुपालन से इस प्रकार की समस्याओं से निजात पाई जा सकती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विश्व की अर्थव्यवस्था में भी अपना दबदबा बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि शहरीकरण में वृद्धि हो। उद्योग-धंधे और सेवा क्षेत्र दोनों का विकास आवश्यक है। सरकारी नीतियों को समयबद्ध तरीके से लागू करने और ढांचागत परियोजनाओं को शीघ्रता से पूरा करने के लिए गंभीर चिंतन होना चाहिए। जनता की भागीदारी और सरकार के समन्वित प्रयासों से सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए वृहदस्तरीय परिवर्तनों से शहरीकरण की परियोजनाओं को आगे बढ़ाना होगा ताकि हमारा देश भी विश्व के विकसित राष्ट्रों में शामिल हो सके।

ओ नीले गुलमोहर

जगमोहन चोपता

दुनिया मेरे आगे

गोपेश्वर से जैसे चमोली के लिए मोटरसाइकिल पर जाता हूं तो सड़क पर गुलमोहर के खूब सारे नीले-नीले फूल बिखरे होते हैं। लगता है, इस अजनबी शहर में कोई तो है जो हमारी राह में फूल बिछाए खड़ा है कि आओ प्यारे, इस जगह तुम्हारा स्वागत है। काहे अकुलाए और खिसियाए हुए दिख रहे हो और मोटरसाइकिल पर पर सरपट दौड़े जा रहे हो! चिंता न करो... काम गंभीर जरूर है, पर जरूरी तो नहीं कि हर वक्त अपनी शक्ल पर बारह बजाए रखा जाए। खुश हो जा प्यारे... कि नीले रंग ही सही, पर कितने खूबसूरत तरीके से खिलाया है मैंने इन्हें। दरअसल, इन्हें मैंने बड़े नाजों से पाला है! बस तुम्हारे लिए बिछाए हैं मैंने ये।

इसके बाद मैं एक गहरी सांस लेता हूं और मन ही मन यह कहता हूं कि सच तो कह रहे हो दोस्त! काम के साथ थोड़ा मुस्कराया भी जा सकता है। खेला जा सकता है, गाना गाया जा सकता है, चंद अल्फाजों को लिखा जा सकता है। कितना कुछ किया जा सकता है, लेकिन आखिर क्यों कुछ गुम-सा हो गया लगता रहता है!

इस तपती दोपहरी में कितना कुछ अनकहे ही कह जाते हो गुलमोहर! किसने लगाया होगा तुम्हें... कैसे पाला होगा इस सर्पीली सड़क के किनारे! कितना ध्यान रखना पड़ा होगा! एक ही नजर में यह साफ हो जाता है कि बहुत मेहनत लगी होगी तुम्हें पनपने और पनपाने में। हम कहां इतनी मेहनत कर पाते हैं। हालांकि यह जरूर लगता रहता है कि मेहनत करनी तो चाहिए। चलो... थोड़ा तुम्हें ही समझने में मेहनत कर ली जाए।

तो गुलमोहर बाबू, मुझे यही पता है कि तुम्हारा जन्म स्थान ब्राजील है, लेकिन तुम यहां गोपेश्वर कैसे आए होगे! खैर, तुम्हारे फूलों से यही लग रहा है कि तुम्हें भी मेरी तरह गोपेश्वर बहुत पसंद आ रहा है। सुना है कि तुम्हारे पुरखों को भारत आए फिलहाल दो सौ साल ही हुए हैं। तो अभी समाज में जैसा मौसम चल रहा है, उसे देखते हुए मेरी एक सलाह है कि खबरदार हो जाओ गुलमोहर! कहीं देश के ठेकेदार बने खास किस्म के लोग तुम्हें भी विदेशी न बोल दें। लेकिन ऐसी बातों पर बहुत ज्यादा चिंता न करो! यहां के आम लोगों ने तुम्हारे फूलों का उपयोग कृष्ण की मूरत को सजाने में कर लिया है। तभी तो तुम्हें कृष्ण-चूड भी कहते हैं।

सुनो यार... लेकिन तुम्हारे नजदीक जब अपनी मोटरसाइकिल पर आते ही ये कीड़े-मकोड़े तेज गति से नाक, कान, आंख में घुसते हैं न, वह जरा खराब लगता है। लेकिन जब तुम्हारी जासूसी यानी तुम्हारे बारे में तथ्यों की जानकारी हासिल की तो पता लगा कि तुम तो सड़क-किनारे खड़े भरी पूरी शहद की फैक्ट्री हो यार! खूब शहद होता है तुम्हारे फूलों में। यह अलग बात है कि वह शहद कैसे और कहां इस्तेमाल होता है। अभी तक यही जाना है कि तुम्हारी शाखाओं में फूल लगते ही मधुमक्खियां डेरा डाल देती हैं यहां।

हम तुम्हें गुलमोहर बुलाते हैं। वह भी नीला गुलमोहर। लेकिन तुम्हारा ब्राजीली नाम जैकरंडा है और ये वनस्पति विज्ञानी तुम्हें जैकरंडा मिमोसिफोलिया ही कहते हैं। हम भारतीय भी गजब के हैं न! चीज कहीं की भी हो नामकरण संस्कार जरूर कर लेते हैं। वह अपने इलाके और भाषा की सुविधा के साथ। तभी शायद तुम्हारा नाम बंगाल के लोगों ने 'कृष्णचुरा' तो कन्नड़ में 'केम्पू तोराई' रख दिया। तुम्हें इतने नामों से कभी गुदगुदी नहीं लगती क्या! वैसे सुना है तुम तो 'कैसलपिननियासी' परिवार के हो और तुम्हारा बॉटनिकल नाम 'जैकरंडा मिमोसिफोलिया' है। और बाबू मोशाय, तुम तो पांच साल के होते ही फूलों से गुलजार होने लगते हो।

तुम्हारे फूलों के बाद फल भी तो मनमोहक लगते हैं। बल्कि मैं इन्हें फल के बजाय बीजों की टोकरी कहूंगा तो ज्यादा बेहतर होगा। करीब-करीब किसी सीपी की तरह होते हैं तुम्हारे फूल। और जब खुलते हैं तो दर्जनों बीजों को फैला देते हो तुम धरती पर, ताकि खूब सारे फूल खिलें इस धरती को सुंदर बनाने के लिए। वैसे 1978 में बनी फिल्म 'देवता' में गुलजार साहब ने तुम पर बहुत ही रूमानियत भरा गीत लिखा है। पता है न तुम्हें! अरे वहीं गीत- 'गुलमोहर तुम्हारा नाम होता, मौसमे गुल को हंसाना भी हमारा काम होता...।'

गुलमोहर, तुमने कभी लेखक और गायक स्टीव टिलसम का 'ओ जेकरेंडा...' गीत सुना है? कभी फुर्सत हो तो सुनना प्यारे... बिन हवा के झूमने न लगो तो बताना। उत्तराखंड की एक साथी समाजकर्मी लिखती हैं कि तुम्हारे फूलों के रंग को स्त्रीवादी रंग भी कहा जाता है। और मेरी एक शिक्षिका साथी तो तुम्हारे फूलों के रंग की तरह के खूब सारे सूट सिलवाना चाहती हैं। यानी कि तुम तो बहुत सारे लोगों की पसंद हो। यों ही खिलते रहो प्यारे!

सुलगते जंगल

इन दिनों उत्तराखंड के वनाच्छादित पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, नैनीताल, बागेश्वर, टिहरी, उत्तरकाशी व रुद्रप्रयाग-देहरादून जिलों में जंगल की आग लोगों को डराने का काम कर रही है। इनमें से कुछ जंगलों की आग पर काबू पा लिया गया है, लेकिन अभी भी कई जगहों के जंगल धधक रहे हैं। पौड़ी जिले के विकासखंड कीर्ति नगर में राजकीय इंटर कॉलेज जंगल की आग के चपेट में आकर स्वाहा हो गया। इस भीषण गर्मी में जंगलों में आग लगने से न सिर्फ वनस्पतियां नष्ट होती हैं, बल्कि वन्य जीवों के अस्तित्व पर खतरा रहता है। अफसोस की बात है कि जंगलों की यह अब उत्तराखंड के लिए एक सालाना त्रासदी जैसी बन गई है लेकिन उसे रोकने के लिए स्थायी और कारगर उपाय नहीं किए जा रहे हैं।

सरकारी आंकड़े के मुताबिक अब तक कुल मिला कर जंगल में आग लगने की सोलह सौ से अधिक घटनाएं हुई हैं। बहरहाल, विज्ञान कितनी भी तरक्की कर ले, लेकिन प्रकृति के आगे हमेशा बौना नजर आता है। उत्तराखंड में हर वर्ष फरवरी के बाद से जंगलों में आग लगने की घटनाएं शुरू हो जाती हैं। प्रशासन आग बुझाने का काम भी करता है लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात रहता है। जून आते-आते हजारों हेक्टेयर जंगल स्वाहा हो जाते हैं। इस दौरान भीषण गर्मी में आग बुझाना प्रशासन के बस में नहीं रहता। लिहाजा, प्रशासन खानापूर्ति कर जुलाई में बरसात के साथ हो लेता है। सवाल है कि जंगलों में लगी आग को बुझाने के लिए तकनीकी तरक्की, पर्यावरणीय राज्य, जैविक संतुलन और पर्यटन की अपार संभावना सहेजे राज्य के प्रति इस तरह की लापरवाही क्यों? पहले से ही हम साफ पानी, स्वच्छ हवा और सदाबहार मौसम के लिए कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। कई पर्यावरणीय सवाल भी हवाओं में तैर रहे हैं, जिन्हें जवाब का इंतजार है।

● *पवन कुमार मौर्य, नई दिल्ली*

सियासी हिंसा

पश्चिम बंगाल में राजनीतिक हिंसा थमने का नाम नहीं ले रही है। आए दिन तृणमूल कांग्रेस और भाजपा कार्यकर्ताओं के बीच झड़प की खबरें आती रहती हैं। कई बार झड़प के दौरान किसी कार्यकर्ता की मौत भी हो जाती है। राजनीति हिंसा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। प्रदेश सरकार पर अरोप लग रहे हैं कि तृणमूल कार्यकर्ताओं द्वारा भाजपा के कार्यकर्ताओं को निशाना बनाया जा रहा है। ऐसे में सरकार की भूमिका संदिग्ध हो जाती है। एक दौरे के समय मुख्यमंत्री भी भाजपा कार्यकर्ताओं के नारे सुन कर भड़क उठी थीं। लिहाजा, राज्य में हिंसा रोकने के लिए केंद्र सरकार को हस्तक्षेप करने की जरूरत है जिससे लोग खुद को सुरक्षित महसूस कर सकें।

● *रितेश कुमार उपाध्याय, संत कबीर नगर*

तंबाकू निषेध

दुनियाभर में इकतीस मई को हर वर्ष तंबाकू निषेध दिवस मनाया जाता है ताकि लोगों में इसके सेवन से होने वाली घातक बीमारियों के बारे में जागरूकता आए। विश्व में लोग अलग-अलग रूपों में तंबाकू का सेवन करते हैं जैसे बीड़ी, सिगरेट, गुटखा, खैनी, हुक्का आदि और इसमें निकोटिन होने के कारण यह मनुष्य के शरीर को बहुत हानि पहुंचाता है। तंबाकू से जुड़ी कई बीमारियों में से कैंसर सबसे घातक है। कैंसर से मृत्यु होने के मामले में यह बीमारी दूसरे नंबर पर विराजमान है और मुंह में कैंसर होने का खतरा सबसे ज्यादा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया की कुल जनसंख्या में से बारह प्रतिशत धूम्रपान करती है। धूम्रपान से कर्क रोग होता हैं, यह लिखा होने के बावजूद भारतीय इसका कश लगाते हैं। धूम्रपान की आदत युवाओं में बढ़ती जा रही हैं यह एक चिंता का विषय है। सिनेमाघरों और टीवी विज्ञापन के जरिए अभियान चलाया जाता हैं लेकिन लोगों में तंबाकू सेवन के प्रति घृणा पैदा नहीं होती। गुटखा और खैनी की बिक्री पर महाराष्ट्र व अन्य राज्यों में पाबंदी है लेकिन इस नियम को ताक पर रखते हुए राज्यों में अवैध तरीके से और छुपा कर ग्राहकों को इसे पहुंचाया जाता है। इसे खाकर लोग सार्वजनिक स्थानों पर थूक कर देश को गंदा करते हैं जिससे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत के छवि भी धूमिल होती है।

ग्रामीण क्षेत्र के लोग अशिक्षित होने के कारण इसके सेवन से होने वाले गंभीर परिणामों से वाकिफ नहीं हैं इसलिए बुजुर्ग से लेकर बच्चे भी गुटखा और खैनी का सेवन करते हैं। इससे उनके मुंह में संक्रमण हो जाता हैं जिसका महंगा इलाज इन्हें कराना पड़ता है। इस तरह तंबाकू का सेवन निर्धनता का भी कारण बनता है। पाबंदी होने के बावजूद कॉलेज और स्कूल के आसपास पान की दुकान देखने को मिलती हैं जहां बीड़ी-सिगरेट बेची जाती हैं और वहीं से युवाओं को इन हानिकारक चीजों की लत लगती है। वे अवसादग्रस्त हो जाते हैं जिससे उनकी पढ़ाई पर भी असर होता है। इसलिए सरकार, स्कूल और कॉलेज में जन जागृति अभियान चलाकर तंबाकू के खिलाफ लड़ाई लड़ना जरूरी हो गया है।

● *निशांत महेश त्रिपाठी, कोंढाली, नागपुर*

जनमत के विरुद्ध

उत्तर प्रदेश में बसपा प्रमुख मायावती ने सपा के साथ अपनी पार्टी के गठबंधन को स्थगित रखने की घोषणा की है। कल तक साइकिल पर हाथी की सवारी और गठबंधन की पैरोकारी कर रहे दोनों दलों के कार्यकर्ता और गठबंधन को वोट देने वाले मतदाता खुद को ठगा महसूस कर रहे हैं। बहुदलीय व्यवस्था में हजारों की संख्या में राजनीतिक दल पंजीकृत हैं और कुछ दल किसी चुनाव विशेष के लिए एक साथ आते हैं तो ऐसे में सवाल उठता है कि सिद्धांतविहीन दलों की आवश्यकता क्या है? कानून में चुनाव-पूर्व गठबंधन का प्रावधान कहां है? एक दल के चुनावी मंच पर दूसरे दल के नेताओं की मौजूदगी, उनके भाषण और उनके दलीय चुनाव चिह्न वाले झंडे-पोस्टर कानूनी दृष्टि से अवैध और अमान्य होने चाहिए। मतदाता स्वयं परिपक्व हैं। उन्हें गठबंधन के नाम पर भ्रमित करना कतई उचित नहीं कहा जा सकता है। बिहार में जनता दल (एकी) और राष्ट्रीय जनता दल ने मिलकर विधानसभा चुनाव लड़कर सफलता पाई थी लेकिन कुछ दिनों के बाद जनता दल (एकी) ने राष्ट्रीय जनता दल को ठेंगा दिखा दिया। यह जनमत का अपमान है, जो बंद होना चाहिए।

● *अजिताभ सिन्हा, चित्रगुप्त नगर, खगड़िया*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com